वैदिक परिप्रेक्ष्य में नक्षत्र-ज्ञान की महत्ता : एक विवेचन

डॉ. सोनिया, सहायकाचार्या संस्कृत
मानविकी विद्यापीठ,
इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय,
मैदान गढ़ी, नई दिल्ली

प्राचीन काल में भारतीय मनिषियों ने काल की गणना हेतु यथासम्भव सभी प्रकार से प्रयत्न किये। भारतीय दार्शनिकों ने काल को एक तत्त्व के रूप में स्वीकृत किया है। काल ही सृष्टि का निर्माण करता है और संहार भी करता है – **"कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजा"**। अतः काल का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है। काल के ज्ञान हेतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण साधन है – ब्रह्माण्ड। ब्रह्माण्ड में होने वाले परिवर्तन ही काल गणना में सर्वाधिक सहायक है। ज्योतिष खगोलशास्त्र का प्रमुख आधार है, इसलिए ब्रह्मांड की जानकारी तथा उसकी कालगणना में यह एक प्रमुख शास्त्र है। ज्योतिष का वास्तविक अर्थ है वह शास्त्र जिससे प्रकाशमान ग्रह-नक्षत्रों इत्यादि की गति और स्थिति का कलन या ज्ञान किया जाता है।[1] ग्रहों की गति स्थिति मनुष्यों के काल गणना का आधार है । परंतु ग्रहों की जो ज्योतिषीय परिभाषा है, उसके अनुसार ग्रहों को हम प्लैनेट नहीं कह सकते। अंग्रेजी के प्लैनेट के नामों में केवल उन अंतरिक्षीय पिंडों को शामिल किया गया है, जो सूर्य का चक्कर लगाते हैं। दूसरी ओर भारतीय ग्रहों में उन पिंडों और छाया बिंदुओं को भी शामिल किया गया है, जिनके कारण पृथिवी पर जीवन प्रभावित होता है। ग्रहों की कुछ परिभाषाएं निम्नानुसार प्राप्त होती हैं। एक परिभाषा के अनुसार 'गृह्णाति गतिविशेषानिति' अर्थात् जो विशेष गति को ग्रहण करते हैं, वे ग्रह हैं। एक अन्य परिभाषा के अनुसार 'गृह्णाति फलदातृत्वेन जीवानिति' अर्थात् जीवों को जो (कर्म) फल देते हैं, वे ग्रह हैं। नवग्रहों की गणना इस प्रकार की गयी है – सूर्य्यश्चन्द्रो मङ्गलश्च

[1] ज्योतिष्मतांग्रह-नक्षत्रादीनांगतिंस्तिथिञ्चाधिकृत्यकृतंशास्त्रम्

बुधश्चापि बृहस्पतिः। शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति नव ग्रहाः।। इन ज्योतिषीय नवग्रहों में केवल सात ही अंतरिक्षीय पिंड हैं, दो केवल छाया ग्रह हैं। छाया ग्रह यानी राहु और केतु कोई पिण्ड नहीं हैं, वे पृथिवी के परिक्रमा पथ के दो बिंदु हैं, जिनके कारण सूर्य और चंद्र ग्रहण होते हैं। ग्रहों में भी दो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रह जिनका प्रतिदिन निदर्शन होता रहा, वे थें – सूर्य और चन्द्रमा। चन्द्रमा की कलाओं के घटने और बढने के क्रम से तिथियों का निर्धारण किया गया। सूर्य के उदय और अस्त से वारों का तथा दिन-रात के समय का निर्धारण किया गया। चन्द्रमा की अमावस्या से अमावस्या अथवा पूर्णिमा से पूर्णिमा तक चान्द्रमास की गणना की गई तथा सूर्य के अयन परिवर्तन के आधार पर वर्ष की गणना की गई। चन्द्र आदि ग्रहों की ब्रह्माण्ड में स्थिति का ज्ञान करने की जब जिज्ञासा उत्पन्न हुई तो उसके लिये एक मापक की आवश्यकता हुई। ग्रहों की स्थिति का ज्ञान करने के लिये उनके पीछे दिखाई देने वाले तारे ही सहायक सिद्ध हुए। इस कारण उनके तारों के समूह का निर्धारण करने की आवश्यकता अनुभव हुई। ग्रहों की स्थिति का ज्ञान करवाने वाले उन विशेष तारों को नक्षत्र कहा गया, और जब उन्हीं तारों और स्थूल बारह भागों विभाजन किया गया तो उस प्रत्येक विभाग को एक राशि कहा गया।

भारतीयो को नक्षत्रों का पूर्ण ज्ञान था। यं न क्षीयते तं नक्षत्रम् जो क्षीण नहीं होते हैं उनको नक्षत्र कहते हैं।[2] ब्राह्मण ग्रन्थ में नक्षत्र की परिभाषा देते हुआ है कि गति और कर्म से क्षीण न होने के कारण नक्षत्र कहे जाते हैं।[3] नक्षत्र का सूर्य के समान जिनका अपना स्वयं का प्रकाश है, वह नक्षत्र कहाता है।[4] आधुनिक मान्यता के अनुसार ग्रह पृथ्वी के समान प्रकाशहीन पिण्ड हैं, ग्रहों के ऊपर जो सूर्य की किरणें पड़ती हैं, वे किरणें ही उन्हें प्रकाशित करती हैं। उन ग्रहों पर पड़ने वाली किरणें ही उनसे प्रत्यावर्तित होकर हमें उन ग्रहों को दिखाती हैं। जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में भी कहा है कि निश्चय ही चन्द्रमा की रश्मियाँ

---

[2] "णक्ष गतौ"(पाणिनीय धातुपाठभ्वादि ४४२) धातु से "अमिनक्षियजिवधिपतिभ्योऽत्रन्" इस उणादि सूत्र से अत्रन् प्रत्यय करके नक्षत्र शब्द बनता है।

[3] तन्नक्षत्राणां नक्षत्रत्वं यन्न क्षियन्ति । (गोपथ उत्तर ब्राम्हण १/८)

[4] नक्षत्राणि वै रोचना दिवि । - (यजुर्वेद मां.सं. २३/५)

सूर्य की ही हैं।[5] अर्थात् वे सूर्य की किरणें सूर्य से निकलकर चन्द्रमा पर पड़ती हैं और चन्द्रमा से प्रत्यावर्तित होकर हमें चन्द्रमा की रश्मियों के रूप में दिखाई पड़ती हैं।

पृथ्वी की दो प्रकार की गति, सूर्य की स्थिति और खगोल में ग्रहों, उपग्रहों की गति के ज्ञान के लिए, सभी नक्षत्रों के ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। पृथ्वी के झुकाव के कारण, सूर्य खगोल में क्रान्ति वृत्ताकार पथ में, 8° अंश दूरी के अंतर से, क्रान्ति वृत्त के दोनों ओर वर्ष भर में चलता हुआ दिखाई देता है। इसलिए ग्रहों की स्थिति जानने के लिए, चन्द्रमा और सूर्य की स्थिति जानने के लिए एवं कालचक्र के सम्यक् ज्ञान के लिए इस 16° अंश में व्यापक मेखला में, दिखाई पड़ने वाले नक्षत्रों के ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसी मेखला को ही नक्षत्र मंडल, भ चक्र और राशि चक्र के नाम से जाना जाता है। वेदों में, नक्षत्र मंडल या भ चक्र को समानकोणात्मक 27 भागों में विभाजित किया गया है। इसके आधार पर, इस मंडल के विभिन्न समान विभागों में स्थित नक्षत्रों की आकृतियों को ध्यान में रखकर उनका नामकरण किया गया है। ये 27 नक्षत्र वेदों में श्रुतियों द्वारा विविध नामों से संबोधित होते हैं।[6] इन नक्षत्रों की आकृतियों को समझने के लिए और उनके विभिन्न गुणों को प्रतिष्ठित करने के लिए वेदों में इन्हें 27 भागों में बाँटा गया है। ब्राह्मण श्रुतियों में आए विवरण के अनुसार, इस परिगणना में केवल 27 भागों का उपयोग किया गया है, जिससे वेदों में 27 नक्षत्र का उल्लेख किया जाता है। 28 नक्षत्रों के नाम भी हैं, लेकिन परंपरागत रूप से 27 नक्षत्रों की परिगणना होती है। ऋग्वेद में वर्तमान प्रणाली के अनुसार नक्षत्र चर्चा मिलती है। इस मन्त्र[7] में प्रश्न और उनका उत्तर दिया गया है कि जब कोई किसी से पूछे कि ये नक्षत्र लोक अर्थात् तारागण किसने बनाये और किसने धारण किये हैं और रात्रि में दीखते तथा दिन में कहाँ जाते

---

[5] सूर्यस्यैव हि चन्द्रमसो रश्मयः । - (शतपथ ब्रा. ९/४/१/९)

[6] सप्तविंशतिर्नक्षत्राणि ।- (ताण्डय.म.ब्रा.२३/२३/३)

[7] अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः। अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति॥ - ऋ. 1/24/10

हैं, इनके उत्तर ये हैं कि ये सब ईश्वर ने बनाये और धारण किये हैं, इनमें आप ही प्रकाश नहीं किन्तु सूर्य्य के ही प्रकाश से प्रकाशमान होते हैं और ये कहीं नहीं जाते, किन्तु दिन में ढपे हुए दीखते नहीं और रात्रि में सूर्य की किरणों से प्रकाशमान होकर दीखते हैं। ऋग्वेद के एक अन्य मन्त्र में भी स्पष्ट कहा गया कि सूर्य के आने पर नक्षत्र अस्त हो जाते है।[8] इसी प्रकार हमारे जीवन में भी ज्ञान का सूर्य उदय होने पर तुच्छ वासनाओं के नक्षत्र अस्त हो जाते हैं। अन्य मन्त्र[9] में चित्रा और मघा का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। यजुर्वेद के एक मन्त्र मे 27 नक्षत्रों को गन्धर्व कहा गया है, जिससे ध्वनित होता है कि उस समय 27 नक्षत्रों का प्रचार था, पर यह जानना कठिन है कि नक्षत्रों की गणना किस प्रकार ली जाती थी। अथर्ववेद के 19 वें काण्ड का सातवाँ तथा आठवां सूक्त नक्षत्र सूक्त ही हैं जिसमें में कृत्तिकादि 28 नक्षत्रों का वर्णन किया गया है। इन दोनों सूक्तों के देवता नक्षत्र है अर्थात् इन मन्त्रों में बताया जाने वाला विषय नक्षत्र है। प्रथम मन्त्र में ऋषि नक्षत्रों की गतिशीलता का वर्णन करते हैं कि चित्र-विचित्र अनेक प्रकार के,साथ साथ द्युलोक में प्रकाशित होने वाले, आकाश में सदा गतिशील दिखने वाले,भुवन-ब्रह्माण्ड में कभी भी नष्ट न हाने वाले, अनिष्टनाशक उत्तम बुद्धि की इच्छा करता हुआ, मैं स्वर्गचारी अर्थात् आकाश में चलने वाले नक्षत्रों की, अपनी वाणियों से सपर्या करता हूँ अर्थात् स्तुति करता हूँ।[10] इसी प्रकार दूसरे मन्त्र[11] में ऋषि ज्योतिष शास्त्र के द्वारा नक्षत्रों वा तारागणों का परस्पर सम्बन्ध और चन्द्रमा आदि के साथ उनके संयोग और पृथ्वी पर उनकी गति के प्रभाव को समझकर परमात्मा की अनन्त शक्ति को विचारते हुए सामर्थ्य बढ़ाने के लिए प्रार्थना करता है। तीसरे मन्त्र[12] में दोनों

---

[8] अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः । सूराय विश्वचक्षसे ॥ - ऋ. 1/50/2

[9] वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम् । -ऋ० स० 7/75/5

[10] चित्राणि साकं दिवि रोचनानि सरीसृपाणि भुवने जवानि। तुर्मिशं सुमतिमिच्छमानो अहानि गीर्भिः सपर्यामि नाकम् ॥ - अथर्ववेद (19/7/1)

[11] सुहवमग्ने कृत्तिका रोहिणी चास्तु भद्रं मृगशिरः शमार्द्रा। पुनर्वसू सूनृता चारु पुष्यो भानुराश्लेषा अयनं मघा मे ॥

[12] पुण्यं पूर्वा फल्गुन्यौ चात्र हस्तश्चित्रा शिवा स्वाति सुखो मे अस्तु। राधे विशाखे सुहवानुराधा ज्येष्ठा सुनक्षत्रमरिष्ट मूलम् ॥

फल्गुनी नक्षत्र, हस्त, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, चित्रा तथा स्वाति नक्षत्रों से पवित्र, सुख देनेवाला और मङ्गलकारक, सुख से बुलाने योग्य, हानिरहित होने की प्राथना की है। चतुर्थ मन्त्र[13] में पूर्वा अषाढ़ा नक्षत्र से अन्न, उत्तरा अषाढ़ा नक्षत्र से उत्तम बल, अभिजित् नक्षत्र से पुण्य श्रवण और धनिष्ठा नक्षत्र से पुष्टि की कामना की गई है। यहाँ अभिजित् नक्षत्र के प्रति प्रार्थना करते हुए यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यह अभिजित् नक्षत्र मुझे पुण्य ही देवे पुण्यमेव रासतां। जिस प्रकार से केवल अभिजित् के लिए 'पुण्यं एव' कहा गया है। उस प्रकार किसी अन्य नक्षत्र के प्रति की गयी प्रार्थना में नहीं कहा गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मूलतः यह नक्षत्र पुण्यकाल के रूप में ही मंत्र में प्रयुक्त है। इसी प्रकार ऋग्वेद में भी नक्षत्र की महत्ता स्पष्ट की है की यह पृथिवी, द्युलोक और जल, सूर्य, नक्षत्रों के साथ यह विशाल अन्तरिक्ष हमारी प्रार्थना को सुनें।[14]

अग्रिम सूक्त में इस विषय को आगे बढ़ाते हुए ऋषि उन नक्षत्रों के ज्योतिष ज्ञान से दूरदर्शी होकर विघ्नों को हटाकर सुख पाने के लिए सन्देश देते हैं।[15] जिस प्रकार सूक्त 7 में कृत्तिकाओं से लेकर भरणियों तक अट्ठाईस नक्षत्र बताये हैं। यह मन्त्र कहता है कि वे नक्षत्र चन्द्रमा के मार्ग में चक्र बनाकर घूमते हैं। इसलिये जिस किसी एक नक्षत्र को ध्रुव मानकर गणना करें तो प्रत्येक अन्तिम नक्षत्र अट्ठाईसवाँ होता है, जैसे वेद में कृत्तिकाओं से लेकर भरणी, और लोक में अश्विनी से लेकर रेवती अट्ठाईसवाँ नक्षत्र हैं।[16] अग्रिम मन्त्र में प्रातः काल और सांयकाल के शुभ होने का वर्णन करते हुए ऋषि कहते हैं कि सुन्दर प्रातःकाल,

---

[13] अन्नं पूर्वा रासतां मे अषाढा ऊर्जं देव्युत्तरा आ वहन्तु। अभिजिन्मे रासतां पुण्यमेव श्रवणः श्रविष्ठाः कुर्वतां सुपुष्टिम् ॥

[14] शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्यो नक्षत्रैरुर्व१न्तरिक्षम्॥ - ऋग्वेद (3/54/19)

[15] यानि नक्षत्राणि दिव्यन्तरिक्षे अप्सु भूमौ यानि नगेषु दिक्षु। प्रकल्पयंश्चन्द्रमा यान्येति सर्वाणि ममैतानि शिवानि सन्तु ॥

[16] अष्टाविंशानि शिवानि शग्मानि सह योगं भजन्तु मे। योगं प्र पद्ये क्षेमं च क्षेमं प्र पद्ये योगं च नमोऽहोरात्राभ्यामस्तु

सुन्दर सायंकाल और सुन्दर दिन मेरे लिये आनन्द का विस्तार करने वाले होवे।[17]

तैत्तिरीय ब्राह्मण में नक्षत्रों की आकृति प्रजापति के रूप में मानी गयी है - नक्षत्र रूपी प्रजापति का चित्रा सिर, हस्त हाथ, निष्टया - स्वाति हृदय, विशाखा जंघा एवं अनुराधा पाद है।[18] इसी ग्रन्थ में एक स्थान पर आकाश को पुरुषाकार माना गया है। इस पुरुष का स्वाति हृदय वताया गया है। शतपथ ब्राह्मण और तैत्तिरीय ब्राह्मण में नक्षत्रों की आकृति का बडा सुन्दर विवेचन है। इन ग्रन्थों से सुस्पष्ट सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में नक्षत्रविद्या का अधिक विकास था। इसके प्रभाव और गुणों का वर्णन भी अथर्ववेद के कई मन्त्रो में मिलता है शतपथ ब्राह्मण के एक मन्त्र में बतलाया गया है कि सप्तर्षि नक्षत्रपुज जाज्वल्यमान नक्षत्रपुंज है। तैत्तिरीय ब्राह्मण के कुछ मन्त्रो में अग्न्याधान, विशेष यज्ञ एव अन्य धार्मिक कृत्यो के लिए शुभाशुभ नक्षत्रों का कथन किया गया है। अतएव स्पष्ट है कि नक्षत्रविद्या उन्नति को चरम सीमापर थी, इसीलिए इस युग में ज्योतिषका अर्थ नक्षत्रविद्या किया जाता था ।

---

[17] स्वस्तितं मे सुप्रातः सुसायं सुदिवं सुमृगं सुशकुनं मे अस्तु। सुहवमग्ने स्वस्त्यमर्त्यं गत्वा पुनरायाभिनन्दन् ॥

[18] यो वै नक्षत्रिय प्रजापतिं वेद । उभयोरेन लोकयोविंदु । हस्त एवास्य हस्त । चित्रा शिर । निष्ट्या हृदय | करू विशाखे । प्रतिष्ठानुराधा. । एष वै नक्षत्रिय प्रजापति । - तै० ब्रा० १.५२